काशी के कुछ भूले बिसरे व्यक्तित्व

राय आनन्दकृष्ण*

काशी के व्यक्तित्वों का कोई ओर छोर नहीं। यहाँ मैं इस वर्ग के कुछ महानुभावों का उल्लेख मात्र दे रहा हूँ जो अब भुलाये जा रहे हें। स्थानाभाव के कारण उनका पूरा वृत्तांत देना संभव नहीं है, न मैं स्वयं को इस कार्य के लिए योग्य ही मानता हूँ। परन्तु आशा है कि इस आलेख द्वारा कुछ ऐसी सूचनाएं लिपिबद्ध हो सकेंगी जो भविष्य के लिए उपयोगी होंगी। ये मुझे मौखिक परम्पराओं से प्राप्त हुई हैं। यहाँ यह उल्लेख करना भी आवश्यक है कि इसमें किसी प्रकार की क्रमबद्धता नहीं है, यहाँ हमारा उद्देश्य किसी व्यक्तित्व की उपेक्षा करना नहीं है, वरन् पाठकों से ओझल होते जा रहे महानुभावों का संक्षेप में स्मरण दिलाना है, विशेष रूप से दुर्लभ संस्मरणों के माध्यम से।

1. **बाबू राधाकृष्ण दास :** आप भारतेन्दुजी के फुफेरे भाई एवं साहित्यिक उत्तराधिकारी थे जो उनके कार्यक्रमों को अग्रसर करते रहे जिसकी परिणति नागरी प्रचारिणी सभा में हुई। आप उसके प्रथम सभापति हुए। जीवन पर्यन्त यह संस्था आपके निर्देशन में चली। वे स्वयं प्रतिष्ठित लेखक रचनाकार थे। शासन में इनका बड़ा सम्मान था। महत्वपूर्ण विषयों में इनसे परामर्श भी लिया जाता था। आप व्यवसाय से आर्किटेक्ट थे, जिसका अन्यतम उदाहरण वर्तमान संस्कृत विश्वविद्यालय का सरस्वती भवन है। आप अल्पायु में ही चल बसे।

2. **बाबू श्यामसुन्दर दास :** आप सेंट्रल हिन्दी स्कूल के हेडमास्टर थे, बाद में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में हिन्दी विभाग के अध्यक्ष हुए। काशी नागरी प्रचारिणी सभा के कर्णधार थे। वहाँ के सभी बड़े कार्यक्रम आपके द्वारा प्रवर्तित हुए, जैसे बृहद् हिन्दी शब्द सागर, व्याकरण, निघंटु, हस्तलिखित पुस्तकों की खोज, हिन्दी क्लासिकों का संपादन, प्रकाशन आदि।

   ये स्वयं विभिन्न क्षेत्रों में प्रतिष्ठित लेखक थे परन्तु साहित्य के इतिहास, भाषा विज्ञान, पुराने ग्रंथों के संपादन आदि क्षेत्रों में शीर्ष पुरुष थे। आपके शिष्यों में डॉ. पीताम्बर बरनवाल, आचार्य नंद दुलारे

* प्रो. राय आनन्दकृष्ण, अमेठी कोठी, नगवां, वाराणसी-221005

वाजपेयी विशेष उल्लेखनीय हैं। आपने काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग का गठन किया। आपके अध्यापन के प्रारम्भिक काल में हिन्दी विषय के प्रश्न-पत्र अंग्रेजी में आते थे और 'सभा' की कार्यवाही अथवा पत्राचार भी अंग्रेजी में होता था।

3. **राजा मुंशी माधोलाल :** ये 'सिपाही नागर' (ब्राह्मण) थे। ये तथा इनके भाई पं. साधो लाल अपनी दानशीलता के लिए प्रसिद्ध थे। राजा साहब काशी की रईसी और शालीनता के अन्यतम उदाहरण थे। एक बार आपने अंग्रेज क्कलक्टर को अपनी जमींदारी से भगा दिया था।

राजा साहब का सुंदर प्रासाद लहुराबीर चौमुहानी पर था पर उसके प्रवेश-द्वार पर एक भड़भूजा था, जिससे बराबर धुँआ उठता रहंता था। ब्राह्मण रूप में राजा साहब को अंत में उस सम्पत्ति को दान में प्राप्त करनी पड़ी। यहीं बड़े लाट (वायसराय) कर्जन की अगवानी हुई थी, जो उस समय बहुत बड़ी बात थी।

4. **बाबू गोविंद दास शाह :** बाबू साहब सुप्रसिद्ध शाह परिवार के रत्न थे, अग्रगामी एवं निर्भीक विचारों वाले। युवकों में नवजीवन का संचार करते, वे आपस में समानता का मंत्र फूँकते। किसी अंग्रेज अफसरों से समानता के आधार पर व्यवहार करते एवं इस दिशा में एक आदर्श प्रस्तुत करते।

वे स्वयं संस्कृत के प्रकांड पंडित थे, उनके यहाँ पंडितों का जमघट लगा रहता, शास्त्र चर्चा होती रहती, उनके अनुज (भारत रत्न) बाबू भगवान दास की इस दिशा में कीर्ति विश्व भर में फैली थी। बाबू गोविंददास जी की प्रेरणा से सुप्रसिद्ध चौखम्भा संस्कृत सीरीज का प्रकाशन आरंम्भ हुआ।

बाबू साहब ने काशी की अनेक संस्थाओं का निर्माण किया या उनका विकास किया। इनमें नागरी प्रचारिणी सभा, (तत्कालीन) हरिश्चन्द्र सकूल, अग्रवाल महाजनी पाठशाला, अग्रवाल समाज एवं उसका भंडार (जहाँ से बिरादरी के लोगों को सामान मंगनी दिया जाता है), काशी सेवा समिति आदि आदि विशेष उल्लेख्य हैं।

श्रीमती एनीबेसेंट के सेन्ट्रल हिन्दू कालेज तथा थियोसाफी आंदोलनों में ये उनका दाहिना हाथ थे। इस संबंध को वे माता-पुत्र का संबंध बताते। अग्रवाल जाति के तेजस्वी नवयुवक बाबू लक्ष्मीचन्द्र को उच्च अध्ययन हेतु विदेश जाने एवं भेजने में इन्होंने बड़ी सहायता की, फलत: उनके बाद ये (और अन्य 17 लोग) जाति बहिष्कृत कर दिये गये। इनमें अन्य सभी क्रमश: माफीनामा देकर एवं प्रायश्चित कर जाति में सम्मिलित हो गए परंतु बाबू साहब एवं उनका परिवार कागज पर आज भी "अजाति" है।

5. **राय श्यामकृष्ण (छगन जी) :** ये "राय" कुल में उत्पन्न हुए एवं अपने उदात्त जीवन, संगीत प्रेम

आदि के क्षेत्रों में अपने समकालीनों के प्रेरणादायक थे। उनका उद्यान (गणेश बाग) बेशकीमती एवं सुरूचिपूर्ण वस्तुओं के लिए दूर-दूर तक विख्यात था। सुप्रसिद्ध संगीतज्ञ बरकतुल्ला खाँ एवं गौहर जान भी उनके स्टाफ में लगभग डेढ़ बरस रहे। बनारसी ठुमरी के बादशाह मौजुद्दीन खाँ भी (इस क्षेत्र के आख्यानक पुरुष) इसमें सम्मिलित थे। संभवत: गणेशबाग में ही काशी को प्रथम गैस प्लांट और बिजली उत्पादन (जेनरेशन) केन्द्र और सारे भवन में पानी का नल आदि लगे।

6. **राजा मोतीचंद्र :** आप भी अग्रवाल जाति के रत्न थे। आपके परिवार में ''आधुनिक कर्ण'' दानवीर जगत्प्रसिद्ध बाबू शिवप्रसादगुप्त हुए। राजा साहब के पूर्वज आजमगढ़ में आकर काशी में बसे। राजा साहब ने आजमगढ़ पैलेस एवं उससे लगी हुई 'मोती झील' का निर्माण कराय, जिसकी बड़ी प्रशंसा हुई। ब्रिटिश शासन में आपका बड़ा आदर था। कालांतर में बनारस सर्राफे के चौधरी मनोनीत हुए।

राजा साहब ने कई प्रतिष्ठित वंशों के नाबालिग मालिकों की देखभाल की जैसे बाबू यदुनाथ प्रसाद शाह, बाबू किशोरी रमण, गोपाल मंदिर के गुसाई जी आदि।

राजा साहब के समाजसेवी व्यक्तित्व का भी परिचय देना अभीष्ट है। प्राय: 80-90 वर्ष पूर्व एक बार महंगी आ गई थी तो उन्होंने सारे नगर में 'सस्ते गल्ले' की दुकानें खुलवा दीं। अग्रवाल जाति में शुभ कार्यों में रसमों का बड़ा जटिल जंजाल था, उनमें से महत्वपूर्ण को छोड़कर अन्य उन्होंने हटा दीं एवं इसके चलते खर्चों को घटा दिया। बहुत समय तक इनका अनुशासन चला। संभवत: मणिकर्णिका घाट में दाह स्थल का भी उन्होंने जीर्णोद्धार कराया। उनके द़ान से प्रतिवर्ष जाड़ों में नि:शुल्क मोतियाबिन्द का आपरेशन होता है। उन्होंने सारनाथ के निकट कुष्ठाश्रम स्थापित किया जो आज तक सेवा कर रहा है।

7. **देवकी नंदन खत्री :** ये 19वीं शती के उत्तरार्ध में हुए। बचपन से ही अपनी मंडली में (मौखिक) कहानियाँ सुनाया करते। बाद में वे महाराज बनारस के वन विभाग के अध्यक्ष हो गए थे, अत: जमानियाँ (गाजीपुर) से लेकर चकिया-नौगढ़ आदि क्षेत्र में निरंतर घूमा करते थे। उनके उपन्यासों की पृष्ठभूमि भी यही क्षेत्र हैं। इन उपन्यासों वाली उनकी प्रेयसी, चंद्रकांता लोगों के चंगुल में पड़ गई थी, उसी को उन्होंने तिलिस्म का रूप दे दिया। यह भी कहा जाता है कि आजमगढ़ में एक वृद्ध महिला स्वयं को इन उपन्यासों से जोड़ती थी। खत्री जी के कारण जासूसी उपन्यासों का एक प्रवाह सा चल पड़ा।

उनके सुपुत्र श्री दुर्गाप्रसाद (बच्चे जी) भी उपन्यास लेखक थें कांग्रेस आंदोलन में जेल भी गए थे। भूमिगत ''रणभेरी'' के प्रकाशन की वे एक धुरी थे।

8. **पं. किशोरी लाल गोस्वामी :** संभवत: हिन्दी की पहली मौलिक कहानी इन्हीं की कलम से निकली (1906 ई.)। इनके उपन्यासों की बाढ़ गई। उस समय के मानदंड से ये कुछ ज्यादा ही मसालेदार थीं। यद्यपि वे शिष्यों की दीक्षा मंत्र एवं कंठी देते पर स्वयं उनका रहन-सहन उत्तेजक था, भड़कीले वस्त्र पहनते थे। उधर उनके सुपुत्र पं. छबीले लाल गोस्वामी परम गांधीवादी थे, और संभवत: (बाद में) आंदोलन में जेल भी गए थे।

एक बार बृद्ध गोस्वामी जी खिजाब की शीशी लाए, सुपुत्र को यह न भाया, चुपचाप उनके लिखने के टेबुल पर एक शेर लिखकर छोड़ आए :

"बाकी है अभी शेख में हसरत गुनाह की
काला करेगा मुँह भी जो दाढ़ी सियाह की।।"

वृद्ध पिता ने इसे देखा, और शीशी दरवाजे से बाहर फेंक दी।

9. **कवि रामानंद :** संभवत: थे तो गया के पर काशी को ही उन्होंने अपना घर बना लिया था, शायद किसी नायिका के प्रति आकृष्ट होकर। ये हिन्दी के सवैये छंद में उर्दू की कविता करते थे, बाजार में किसी-किसी दुकान के सामने बैठकर सुनाया करते, भीड़ लग जाती। यथा :

एक परचे ने परचाया न हुजूर हमें, हम गम खाया जिये ऐसी को बसाई में।
शाहिद हमारे श्रम तर ये रहेंगे खूब दरिया बहाते थे जो दुनियाँ-हँसाई में।।
'रामानन्द' तेरा था भरोसा बहुतेरा, तूने ऐसा मूँह फेरा है हिनोज बेवफाई में।
सीना में पसीना कहीं जहन न पीना पड़े, जीना दुश्वार है जनाब की जुदाई में।।

अथवा

आफत के परकाले हैं ये गेसू निराले अजीबो-गरीब हैं।
गोश तक आये, बढ़े दोश तक, ता-कमर आकर पाये-नसीब हैं।।
है 'रामानन्द' दो चंदये मार से, हाथ किसी के न होते हबीब हैं।।
आशिक हाय सम्हाल के बैठो, कयामत शामत दोनों करीब हैं।
इन कविताओं में रसिकता है, लोगों की जुबान पर थी।

10. **पं. दुखभजन जी :** ये संस्कृत के प्रकांड विद्वान थे। परन्तु सदा नशे में डूबे रहते। हाथ में सोटा लिए रहते और कभी-कभी चला भी दिया करते। कहा जाता है कि किसी सभा में नशे में उनके मुँह से निकल

गया, ''गौरीशंकराभ्यां नमामि''। यहाँ ''नमामि'' के स्थान पर व्याकरणानुसार ''नमः'' होना चाहिए। पंडित मंडली हँस पड़ी तब वे चैतन्य हो उठे, बोले ''दुखभजन'' के मुँह से अशुद्ध नहीं निकल सकता, तुम मूर्खों! उसे समझ नहीं सकते। मैंने कहा, ''गौरी शकराभ्यां नमामि''। यह व्याकरण से खरा है।

11. **आचार्य भगवानदीन :** ये बुंदेलखंड की ओर से काशी आए। अपने समय के प्राचीन हिन्दी काव्य के विशेष रूप से ब्रजभाषा काव्य के अन्यतम विद्वान थे। इनकी शिष्य परम्परा में आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र शिखर पुरुष थे, अन्य शिष्यों की भी लंबी सूची है। रीति परंपरा के ये अंतिम आचार्य हुए। केशवदास की कृतियों के कठिन काव्य की साधिकारी हिंदी टीका, आपका ही कार्य था।

हिन्दी की बीसवीं शती की खड़ी बोली काव्य पर उनकी आस्था न थी। संभवत: उन्होंने प्रारंभ में स्वयं खड़ी बोली काव्य रचना की पर उसे अपेक्षित मान्यता न प्राप्त हुई। इस दृष्टि से काशी के तात्कालीन पुरानी शैली के साहित्यकारों के साथ-साथ ''दीन'' जी ने श्री मैथिलीशरण जी के प्रारंभिक काव्यों की कटु आलोचना की, प्रहार पर प्रहार किए। गुप्तजी ने भी इसका उत्तर इस प्रकार अपने ''किसान'' नामक काव्य की एक पंक्ति में दिया। यह एक किसान की आत्मगाथा है, दो चार पंक्तियों के बाद उक्त ''किसान'' स्वयं की व्यथा कहता है।

''पाठक खिन्न न हों दीन यह पागल-सा क्या बकता है। दीनजी ने नागरी प्रचारिणी सभा भवन के पार्श्व स्थित पार्क में एक ''साहित्य विद्यालय'' की स्थापना की थी, जो उनके बाद ''दीन विद्यालय'' के नाम से विख्यात हुआ। इसमें शिष्य रूप में ही नहीं अध्यापक रूप में भी काशी के श्रेष्ठतम अध्यापकों/समीक्षकों ने भाग लिया। खेद है कोई बीस-पच्चीस बरसों से यह बंद है।

12. **पं. त्र्यंबक शास्त्री :** ये महाराष्ट्रीय ब्राह्मण थे, कुलगत वैद्य थे, पिता से परम्परागत विद्या प्राप्त की थी। जिस प्रकार अपने शास्त्र एवं अनुभवों में श्रेष्ठ थे, वैसे ही अपने उग्र स्वभाव के लिए भी विख्यात थे। उनकी कीर्ति दिग्दिगतं तक फैली थी, समूचे भारतवर्ष से लोग उनके पास चिकित्सा हेतु आते। अपने नाड़ी-ज्ञान एवं रस चिकित्सा के लिए आप विख्यात थे। उनकी रसायनशाला में उत्तमोत्तम औषधियाँ तैयार होतीं। उनके लिए वे सर्वश्रेष्ठ सामग्रियों का चुनाव करते, यदि तनिक भी त्रुटि होती तो गंगा में प्रवाहित करा देते।

उनके ज्ञान और अनुभवों के अनेक किस्से हैं, जैसे 'कोमा' में पड़े काशी नरेश महाराज ईश्वरीनारायण को पुन: होश में लाना। वैसे ही इनकी विलक्षणताओं के और भी किस्से हैं यथा, अलवर नरेश को

साधारण रोगियों की पंक्ति में बैठाना अथवा कलकत्ते के एक सेठ पर उनके दिए नोट रखवा कर आग लगवाने का उपक्रम करना।

चिकित्सा क्षेत्र में वे पर्पटी की रस चिकित्सा के आचार्य थे। उसमें 60 या 90 दिनों तक केवल दही का मट्ठा ही पीना पड़ता है। एक वृद्धा को उन्होंने प्राय: निरोग कर दिया था पर उन्होंने छिपकर जल पी लिया, शास्त्री जी ने नाड़ी से उसे पकड़ लिया, कहा, "अब यह असाध्य है"।

कभी-कभी हास्य के मूड में आ जाते। एक बार कुंभ पर्व पर कहा, "प्राय: प्रयागवासी कुंभ-स्नानं करोति नित्यं", संगीत प्रेमी थे, अच्छा हारमोनियम बजाते थे। उनके प्रमुख शिष्यों में श्री श्रीनिवास शास्त्री चुनेकर हुए।

13. **महामहोपाध्याय पं. अयोध्या शर्मा :** इनका ज्योतिष घराना आज तक प्रसिद्ध है पर शर्माजी ने अपने पांडित्य के द्वारा सारे देश में प्रतिष्ठा अर्जित की, बड़े-बड़े राज सभाओं में वे समावृत्त हुए।

प्रथम महायुद्ध के दौरान देशभर के ज्योतिषियों की दरबार से बिदाई हो गई, वहाँ शर्मा जी का झंडा गड़ गया। वे कहते, "शास्त्र में दोनों विधान थे, मैने क्षत्रियोचित व्यवस्था दी।"

वे कविता भी करते थे। एक बार अपने अ-मांत्रिक छंद में समस्यापूर्ति (काव्य रचना) कर सबको चमत्कृत कर दिया :

परम धरम धर कहत रहत नर, कहत हरत सब भवकर भवकर।
दहन नयन भर भभकत भनभभ, चलत बरद घर शशधर दलधर।
भनत अवध-धव असरन सरनद, भजत समय पर भभर भजत हर।
गर-गर बर-तर परत नजर जब, जरत सकब अघ बसत अमर घर।
काशी के तात्कालीन साहित्यिक जगत में आपका बड़ा सम्मान था।

महामहोपाध्याय जी के एक अन्य संस्मरण को पूरी तरह से समझने के लिए कुछ प्राक्कथन दे रहा हूँ :

(क) फारसी (उर्दू) अक्षरों में "लकार" ("ल" ध्वनि) के लिए "नाम" अक्षर है। छाते या छड़ी की घुमावदान मूठ को उलट देने से इसका स्वरूप स्पष्ट हो जाता है।

(ख) "इस्लाम" (मुहम्मदी धर्म) शब्द का पद-छेद कर सकेतवाची "इस" और "लाम" (दे. ऊपर) दो शब्द बना दिए गए हैं।

(ग) यहाँ काफिर शब्द भी प्रयुक्त है। इसका सामान्य अर्थ "विधर्मी" है जो भारतीय मुसलमानों में

अनादर का सूचक है। परन्तु उर्दू शायरी में कभी-कभी यह अताई (बेवकूफ) के अर्थ में भी आता है।

(घ) शर्माजी की "पूर्ति" में गेसू शब्द आया है जिसका अर्थ है, केश। यहाँ आशय यह है, घनश्याम कृष्ण के कपोल पर लटकी हुइ लट जो "लाम" आकृति के समान थी। "समस्या" (काव्यमय चुनौती) इस प्रकार थी :

"हैं वही काफिर जो वंदे नहीं इस्लाम के"।

इसका अभिधार्थ स्पष्ट है : "जो इस्लाम धर्म के अनुयायी नहीं हैं, वे काफिर हैं।

जैसा हम देखेंगे, शर्माजी ने "इस्लाम" शब्द के "इस" और "लाम" के रूप में पद-च्छेद कर दिया। ब्रजभाषा और उससे प्रभावित तत्कालीन हिन्दी कविता में ऐसे प्रयोग स्वीकार्य थे। अब इस स्थिति में शर्माजी की समस्यापूर्ति देखिए :

"लाम के मानिंद हैं गेसू मेरे घनश्याम के।
हैं वही काफिर जो बंदे नहीं "इस"-"लाम" के।।"

हमें चमत्कारपूर्ण कविता को उस युग में परिप्रेक्ष्य में देखना चाहिए।

14. **आचार्य पं. केशव प्रसाद जी मिश्र :** इनका घराना गाजीपुर के नामी गिरामी वैद्यों का था पर स्वयं उन्होंने संस्कृत साहित्य में, काशी आकर, विद्या अर्जित की। सेन्ट्रल की हिन्दू स्मूल के हेड-पंडित के पद से बढ़ते-बढ़ते काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में हिन्दी विभाग के अध्यक्ष पद से रिटायर हुए। लोगों को बड़ी अपेक्षा थी कि इसके बाद उनका अथाह अध्ययन प्रकाशित होगा पर लगवे से पीड़ित हो गए। अपना सारा शोध अपने शिष्यों में मुक्तहस्त बाँटते रहे। जब भी समय मिलता अपने बंद कमरे में लैंप जलाकर अध्ययन करते रहते। इष्ट-मित्रों के छोटे समूह के अतिरिक्त अन्य लोगों से मिलते तक न थे। बराबर कहते : "अभी बहुत पढ़ना शेष है।" कक्षा में एक-एक शब्द की व्याख्या कर मुग्ध कर देते। उने द्वारा संकलित "रसायन" (दो भाग) में हिन्दी काव्य का चुनाव अद्भुत है। यदि वे उनकी टीका लिख पाते तो वह अकल्पनीय होती, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के "इतिहास" में, उदाहरणों के चुनाव में आचार्य मिश्र जी का बहुत बड़ा योगदान था। कहते हैं, अनेक प्रश्नों पर वे केशव जी के साथ विमर्श कर अपनी निष्पत्ति पर पहुँचते।

आचार्यजी का संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश एवं पुरानी हिंदी पर समान अधिकार था। कक्षा में एक-एक शब्द की ऐसी व्याख्या करते कि छात्र उसमें खो जाते, मानो कवि हृदय बोल रहा है। व्युत्पत्ति के क्षेत्र में

वे बादशाह थे। उन्हें कई प्राचीन एवं आधुनिक यूरोपी भाषाओं का काम चलाऊ ज्ञान था पर उसके आधार पर वे मानते कि पाणिनीय व्याकरण के प्रयोग उनपर भी किए जा सकते हैं। स्वयं पाणिनीय व्याकरण के अनेक अंश वे ध्वनि शास्त्र (फोनेटिक्स) के आधार पर, सार्वदेशिक मानते थे। "अन्यतरस्यां" प्रयोग को वे समानांतर संस्कृत मानते। उन्होंने संस्कृत में थोड़ी ही रचना की पर वे बड़ी प्रौढ़ हैं, अंग्रेजी भी अच्छी लिखते। मेघदूत का हिंदी पद्यानुवाद उनकी काव्यात्मक क्षमता का साख भरता हे, वैसी ही उसकी भूमिका।

बाहर के विद्वान व्युत्पत्ति आदि के जटिल प्रश्नों को लेकर के उनसे समाधान खोजते। उनके प्रिय शिष्य सुप्रसिद्ध कवि शिव मंगल सिंह जी सुमन ने उनके देहावसान पर कहा, "हा!" हिन्दी का पतंजलि आया और "महाभाष्य" लिखे बिना ही चला गया। आचार्य हजारी प्रसाद जी द्विवेदी कहते, "केशवजी के मुँह से (लेखनी से) कुछ अशुद्ध भी निकल जाएगा तो हम उसे शुद्ध सिद्ध कर देंगे, वास्तव में वह शुद्ध ही था, भ्रमवश लोग उसे अशुद्ध समझते।

उनकी अंतरंगता का क्षेत्र सीमित था जिसमें महाकवि प्रसाद जी और मेरे पिता जी (रायकृष्ण दास जी) भी थे। चार छः लोगों की यह मंडली कभी एक के यहाँ, कभी दूसरे के यहाँ जुटती। भदैनी घाट पर घंटे-घंटे भर गंगा करते, गपशप चलती रहती। स्नानोपरांत केशवजी जप करते। इस पर प्रसाद जी ने एक "अनमिल आखर" पंक्ति बनाई थी जिसका अंत अंश था "... जप्पू केशव स्वामी" मेरे पिताजी उन्हें "... कैवर्तक केशवः" कहा करते, वे हल्का सा मुस्करा देते जो उनके शांत गंभीर स्वभाव एवं शुद्ध खादी के स्वच्छ परिधान से मेल खाता।

उनके गंभीर हास्य के दो उदाहरण देना चाहता हूँ : उपर्युक्त "सुमन जी" ब्राह्मणों को भोजन-भट्ट होने की प्रायः हसी उड़ाया करते। एक दिन अपनी सपाट बयानी में केशवजी ने पूछा, "और सुमन वृकोदर किस जाति में हुए। उत्तर स्पष्ट है, सुमन जी की विरादरी में।

इसी प्रकार उनके एक विद्वान मित्र के पुत्र का नाम "ब्रह्म" था पर वे विद्यार्जन में आगे न बढ़ सके। इस पर केशव जी ने कहा, "तो ब्रह्म निर्गुण ही रह गए।"

15. **श्री दुर्गाप्रसाद जी :** मैंने इनके एवं इनके कुल के संबंध में तनिक विस्तार से अन्यत्र लिखा है। यहाँ इतना ही अभीष्ट है कि सुप्रसिद्ध भारतमाता मंदिर में जो नक्शा (रिलीफ मैप) हमारे गर्व का विषय है उसके कर्ता बाबू दुर्गाप्रसादजी ही थे। मध्य एशिया और तिब्बत से लेकर वर्तमान इंडोनेशिया एवं श्रीलंका तक बृहत्तर भारत का मानचित्र बनवाना आपका ही काम था। फिर इसमें राई बराबर त्रुटि नहीं है, भले ही वे पर्वत-पठार हों, झील-नदी हों, मैदान हों, समुद्र हो आदि आदि। सबसे विलक्षण तो यह

है कि वे निर्माण स्थल पर एक बार भी नहीं गए। अपनी खिड़की पर बैठे-बैठे संगमरमर के उन चौकों का निरीक्षण-परीक्षण करते रहे जिन्हें अपने नियत स्थान पर बैठाया गया।

दुर्गाप्रसादजी की, 1935 के लगभग, अवस्था 60 वर्ष की रही होगी। उन्हें भारतीय सिक्कों का तनिक भी ज्ञान न था, पर उनकी मंडली में कई मुद्रा संग्राहक थे। मौर्यकालीन सिक्के "पंच मार्क" कहे जाते हैं क्योंकि उनपर भिन्न-भिन्न चिह्न छपे होते हैं। उनका ठीक ठीक वर्गीकरण न हुआ था। कुतुलवश उन्होंने उसका वर्गीकरण किया जो आज तक मान्य है।

16. **श्री गोविंद शास्त्री दुर्गवेकर :** आरंभिक अवस्था में ये हिन्दी के प्रबुद्ध लेखक और संपादक थे। मंच अभिनेता भी थे। उस काल में इनका क्रान्तिकारियों से सम्बन्ध था, उनका साहित्य भी लिखते-छापते। जीवन के अंतिम वर्षों में खेद है मद्यपान की लत में उन्होंने स्वयं को अत्यन्त हास्यास्पद बना डाला था।

17. **पद्मश्री श्री रामचन्द्र वर्मा :** ये एक सम्भ्रान्त चोपड़ा (खत्री) उत्पन्न हुए एवं श्री रामकृष्ण वर्मा के शिष्य थे। श्री रामचन्द्र जी का प्रारंभिक जीवन विपन्नता में बीता, उस पर उनकी आँखें बहुत कमजोर थीं, मोटा चश्मा लगाकर लेखन कार्य करते। अंग्रेजी के अतिरिक्त बंगला, मराठी आदि में उनकी साहित्यिक पैठ थी। इनके हिन्दी अनुवाद प्रस्तुत किए, मौलिक लेखन साथ-साथ चलता रहा। उनका विपुल साहित्य है। उनका जीवन अत्यंत व्यवस्थित था एवं वे शालीनता की मूर्ति थे। वे नागरी प्रचारिणी सभा के बृहद् हिन्दी शब्द सागर विभाग में उपसम्पादक पद पर थे। वहाँ आत्मीयतापूर्ण वातावरण था। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, वाद में मेरे पिताजी और बाबू ब्रजरत्न दास जी आदि से घनिष्ठता हो गई। वर्मा जी संस्मरणों की खान थे, व्यवहार में अत्यन्त परिष्कृत थे। उनका जीवन अत्यंत नियमित था। उनकी कांग्रेस के स्वतंत्रता आंदोलन में भूमिगत सक्रियता थी, एक बार अफवाह गर्म हुई कि वे गिरफ्तार होने वाले हैं।

परवर्ती काल में उन्होंने हिन्दी शब्दों की व्युत्पत्ति, उनके मानक रूप और अर्थ निश्चित किए, कोशों के माध्यम से प्रकाशित किए। इनमें शब्द एवं उनके अर्थों का सटीक मूल्यांकन है। साथ साथ हिंदी भाषा के साधु प्रयोगों पर भी उनका योगदान स्तुत्य हैं इस दिशा में उनकी पुस्तक "अच्छी हिन्दी" बड़ी विख्यात हुई। अब उस परम्परा को और अधिक ऊँचाई पर ले जाने के दायित्व का पालन उनके भांजे एवं उत्तराधिकारी प्रोफेसर डॉ. बदरीनाथ कपूर कर रहे हें। वे अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति के विद्वान हैं, उनके द्वारा उस परम्परा का विस्तार हो रहा है। वर्माजी नागरी प्राचारिणी सभा के भी उन्नायकों में से थे।आँखों में कष्ट होने के कारण उनकी लिपि को हम सुन्दर नहीं कह सकते, पर उनकी एक शैली कहीं जासकती है। प्राय: 80-90 वर्ष पूर्व यह विवाद था कि उर्दू की तुलना में लिपि उतनी शीघ्रता और

स्पष्ट रूप में नहीं लिखी जा सकती है। इसका टूर्नामेन्ट सरकारी स्तर पर हुआ। हिन्दी का प्रतिनिधित्व वर्माजी ने किया और तीव्रता और शुद्धता दोनों ही दृष्टियों से उर्दू वालों को मात दे सके। वर्माजी बनारसी जीवन पद्धति एवं संस्कृति के एक अच्छे नमूने थे। जिस पर उनके मुहल्ले "लाहोरी टोले" की स्पष्ट छाप थी। उनके प्रसंग में "डॉ. साहब" (बाबू लक्ष्मी नारायण वर्मन को) नहीं भुलाया जा सकता। "डॉ. साहब" की प्रत्युत्पन्नमति एवं चुटकुलों के संस्मरण अब कम ही लोगों को स्मरण होंगे, जैसे, "तुम्हारी मिट्टी पड़ी सड़ रही है", अथवा "एक साथ तीन तीन प्ररोजन पड़ गए", अथवा "अब मोटर पर कूड़ा लदाना रहा है....। आदि आदि।

18. **पं. बेनी माधवजी "पांडे" अथवा भैया जी :** ये ध्रुपद धमार के महासागर थे। किंवदन्ती थी कि इन्हें सहस्राधिक बंदिशें कंठस्थ थीं। उनमें कुछ ऐसी भी थीं कि शुद्ध स्वरों में गाइये तो रात के राग और कोमल स्वरों के साथ गाइये तो प्रात: कालीन राग। ये ताल के तो बादशाह थे, उसमें भी कूटताल के। इसी प्रकार अछोभ राग के भण्डार थे।

गंगातट पर सुप्रसिद्ध रामघाट स्थित पेशवाओं द्वारा निर्मित राममंदिर में इन्हें अहर्निश तानपूरे पर अभ्यास करते देखा जा सकता था। किंवदन्ती थी कि सोते समय भी अपने वक्षस्थल पर तानपूरा लिटा देते थे। तनिक भी नींद खुली कि तानपूरा छेड़ने लगते। साधु प्रकृति के व्यक्ति थे, कहते हैं कि चिलम के भी शौकीन थे। पखावज भी बजाते थे।

इनकी ऐसी धाक थी कि बड़े-बड़े उस्ताद/गायनाचार्य इनके सम्मुख जड़ हो जाते। विदुर वाले संगीत सम्मेलन में इन्हें श्रोताओं में देख इंदौर से आए नामी उस्ताद "नोम नोम" कर उठ गए। प्रत्यक्षदर्शियों से सुना है कि सुप्रसिद्ध बाबू किशोरीरमण जी के लक्ष्मीनारायण मन्दिर में इनका गायन सुन संगीत मार्तण्ड पं. ओंकारनाथ जी ठाकुर ने इनके पैर पकड़ लिए, माला पर रुपये रखकर नजर की।

इनके पूर्वजों ने उन संगीताचार्यों से विद्या प्राप्त की थी जो अमृतराव पेशवा के साथ पूना से साथ आए थे। इस घराने में बड़ी तपस्या करनी होती थी। कहते हैं कि एक चौकी के चार कोनों पर एक एक शिष्य बैठते। प्रत्येक के हाथ में तानपूरा होता था पर एकाध स्वर ऊपर या नीचे होता। पर चारों को अपने-अपने स्वर में साथ-साथ गाना पड़ता था, कहीं चूक की गुंजाइश न थी। सभी ताल के काम साथ-साथ करने होते। अब ये परम्परा इतिहास की वस्तु हो गई।

19. **श्री शिवेन्द्र नाथ बसु (संतू बाबू) :** चौखम्भा स्थित भारतेन्दु भवन के पार्श्व में एक बहुत बड़ी हवेली है जो "बंगाली की ड्योढ़ी" के नाम से विख्यात है। वस्तुत: यह दर्जन-दो दर्जन आंगनों वाली कोठियों का संकुल है। इनका मूल परिवार "मित्र" नामधारी बंगाली कायस्थों का था, इनमें राजा राजेन्द्र लाल

मित्र बड़े यशस्वी हुए। इस परिवार ने विद्या के क्षेत्र में भी, श्रीमती एंनीबेसेंट के साथ, बड़ा महत्वपूर्ण योगदान किया। ये लोग काशी के सांस्कृतिक नेताओं में से एक थे। कई पीढ़ी पहले एक भाई की केवल कन्या थी जिनका विवाह "बसु" परिवार में हुआ। तबसे इस संकुल के एक भाग में "बसु" परिवार रहता आया है। इन दोनों परिवारों का रहन-सहन राजसी स्तर का था।

आज से कोई 30-40 वर्ष पूर्व उक्त परिवार में श्री शिवेन्द्र नाथ बसु का जन्म हुआ। उनके पार्षद उन्हें भगवान शंकर का अवतार तो नहीं, पर कुछ अंश अवश्य मानते थे, संभवत: ऐसा कोई चिन्ह भी था। उन्होंने कहाँ से वीणा वादन की शिक्षा ली, इसे पक्की तौर से कोई नहीं बता सका, पर वे स्वयं कहते कि हमारे वादन से बढ़कर नारद मुनि क्या बजाते रहे होंगे, अथवा तानसेन इससे अच्छा क्या गाते रहे होंगे? उनके यहाँ संगीतकारों की भीड़ लगी रहती जिसमें उस्ताद विस्मिल्ला खाँ एवं उनके बड़े भाई उस्ताद शमसुद्दीन खाँ को मैंने स्वयं देखा है। संतू बाबू एक एक "मीड़" निकालते तो संगीत श्रोता वर्ग (जिसमें प्रारंभ में पं. मिठाई लाल भी होते) को उद्‌बोधन देते, "यह (स्वर) निकालो, यह निकालो"। यह मेरी स्वयं की सुनी बात है। निस्संदेह काशी में (1934 में) संतू बाबू ने संगीत सम्मेलन में शहनाई को मंच पर स्थान दिलाया। सुप्रसिद्ध अलेनदीन भोलू बरसों तक उनसे भारतीय संगीत सीखने के लिए काशी में रहे। मैं जब जब वहाँ गया तो पाया कि गौड़ सारंग की एक ही "मीड़" बजा रहे हैं। दीन भोलू चुपचाप सुन रहे हैं।

एक बहुत बड़े उस्ताद सरोद बजा रहे थे। सामने बैठे "संतू" बाबू अपना कान खुजला रहे थे, मानों खूँट निकाल रहे हों। हारकर दस मिनट बाद उस्ताद ने अपना बाजा रख दिया। बाहर निकलकर मैंने पिताजी से कहा, "शायद संतू बाबू अपना कान खुजला रहे थे, कुछ कष्ट होगा। पिताजी ने सहसा कहा; "वे उस्ताद के स्वरों को मानों कान से निकाल रहे थे, इस पर उस्ताद ने अपना संगीत बंद कर दिया।"

कहते हैं कि वे अर्ध निद्रा में लेटे थे एक लंबा खर्राटा मारा। उनके प्रशंसकों में से एक ने कहा, "वाह! क्या शुद्ध गांधार लगाया है।" संतू बाबू ने सुन लिया था बड़े प्रसन्न हुए।

20. **पं०. शंभु नारायण चौबे :** अपनी चलती वकालत छोड़कर वे काशीवासी हो गए, नागरी प्रचारिणी सभा के पुस्तकालय के अध्यक्ष हुए। ये पूरे गृहस्थ थे पर विरक्त से रहते थे। रामचरितमानस मानों उनकी जीवन पद्धति का अंग था। उनकी भक्तिमय जीवन शैली को देखकर लोग उन्हें छद्मवेशी हनुमानजी कहते थे, पर वे इसे ढोंग मानते थे।

जिन कठिन परिस्थितियों में उन्होंने "मानस का संस्करण तैया किया, उसकी अलग कहानी है", एक तपस्या ही समझिए। "सभा के अधिकारियों का तनिक भी सहयोग न था बल्कि बाधाएँ खड़ी की गई।

फिर भी उन्होंने अपना संस्करण सभा को प्रकाशनार्थ दिया। तब तक ज्ञात सामग्रियों के आधार पर यह सर्वश्रेष्ठ संस्करण माना जाता था। इस हेतु उन्होंने अनेक महत्वपूर्ण हस्तलिखित एवं दुर्लभ प्रकाशित प्रतियों का संग्रह किया जो

भारत कला भवन में सुरक्षित हैं। यह सारा प्रयास अत्यंत विपरीत परिस्थितियों में किया गया, जिसकी अलग ही कहानी है।

21. **उस्ताद रामप्रसाद मुसव्वर :** चित्राचार्य उस्ताद रामप्रसाद के पूर्वजनि उस्ताद सिक्खी ग्वाल ने इस (उत्तर मुगल) चित्रशैली को दिल्ली के उस्ताद लालजी मुसव्वर से प्राप्त किया था। लालजी मुसव्वर दिल्ली के निष्कासित शाहजादे जवान वख्त (जहाँदार शाह द्वितीय) के लवातमें के साथ काशी में जा बसे थे। रामप्रसाद जी उनकी आठवीं-दसवीं पीढ़ी के थे। इस घराने की कई विशेषताएं थीं। इन्होंने अपनी परम्परा को अक्षुण्ण रखा एवं रंग, वसली, तूलिका आदि ही नहीं बैठने के आसन तक को ज्यों का त्यों रखा। पर उनके घराने के परवर्ती चित्रकारों में ''कंपनी शैली'' का भी कुछ प्रभाव आ गया था जो स्वाभाविक ही था क्योंकि ये चित्रकार इस घराने के साक्षात् प्रतिद्वंद्वी थे एवं उनके सामने टिकना था। संभवत: तैल चित्र एवं हाथी दाँत पर चित्रण उन्हीं कंपनी शैली वालों की देन थी। अत: व्यक्ति चित्र ''शबीह'' बनाने में इन दोनों शैलियों में होड़ सी थी पर इनके घराने में अद्‌भुत प्रतिभा थी।

साथ-साथ इनके पास तांत्रिक चित्रों (ध्यान) की परम्परा थी जिसकी बहुत माँग थी। कभी-कभी ये एकांत में चित्र बनाते, उनमें छिपाकर कोई त्रुटि छोड़ देते कि नजर न लग जाय।

एक सौ वर्ष पूर्व 1906 ई. में उस्ताद रामप्रसाद को मेरे पिताजी ने आमंत्रित किया, यह सम्बन्ध आजन्म चला और अगली पीढ़ियों के बीच भी चल रहा है। पिताजी ने उन्हें नए नए ''तरह'' (कंपोजीशन) बनाने को उत्साहित किया जिसमें कुछ अत्यन्त विशिष्ट हैं और तत्कालीन ''बंगाल'' शैली से टक्कर लेती हैं, जैसे शिव तपस्या (गंगावतरण), शिवरात्रि, राधाकृष्ण और सर्वोपरि उमर खैय्याम के चित्र। इनकी दूर-दूर तक ख्याति हुई। आचार्य कुमारस्वामी तक ने उन्हें श्रेष्ठ माना। प्राय: 1943 में वे स्वर्ग सिधारे।

मैंने ऊपर कुछ वृत्तांत सारांश में देने का प्रयत्न किया है। इनके विस्तार में जाने की आवश्यकता है। साथ-साथ कोई 20-25 नाम और भी हैं। अन्य लोगों द्वारा यह सूची बढ़ भी सकती है। इस चर्चा से बीते युग की एक झलक मिलती है।